क्या अहिंसक जीवन जीना संभव है?

डॉ. चंचलमल चोरडिया

आत्मा को अशुभकर्मों से भारी करने में सबसे ज्यादा कारण हिंसा, क्रूरता, निर्दयता का आचरण होता है। दुनियां में कोई भी जीव मरना नहीं चाहता। भले ही उसे न चाहते हुए भी मरना क्यों न पड़े। जीयो और जीने दो पर आधारित जीवनचर्या ही मानवता का प्रतीक होती है। अपने स्वार्थ के लिए अन्य जीवों को कष्ट पहुँचाना पाश्विकता का लक्षण है। हमें तो पिन अथवा सूई की चुभन भी सहन न हो, परन्तु अज्ञानवश पोष्टिकता एवं स्वाद, शिक्षा, दवाओं के निर्माण एवं परीक्षण अथवा उपचार आदि के लिए अन्य जीवों के साथ क्रूरता अथवा उनका वध करना या उन्हें परेशान और पीड़ित करना, स्वयं के लिए दुःखों, कष्टों, रोगों को आमंत्रण देना है। उन मूक बेजुबान, असहाय जीवों की बद्दुआएं, हृदय से निकली चीत्कारें, उनको पीड़ित करने में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वालों को कभी शान्त, सुखी एवं स्वस्थ नहीं रहने देगी। भले ही पूर्व पुण्य के प्रभाव से स्वार्थी मानव को उसका तत्काल दुष्फल न भी मिले।

प्रकाशक

कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर

चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर-342003 (राज.)

फोन: 0291-2621454 (R), फैक्स: 2435471, मोबाइल: 94141-34606

E-mail: cmchordia.jodhpur@gmail.com, Website: www.chordiahealth.com

सहयोग राशि 15/-

अध्यात्म से शून्य स्वास्थ्य विज्ञान अपूर्ण

भौतिक विज्ञान का आधार होता है, जिसे दिखाया जा सके, जो मांपा जा सके, जो प्रयोगों , परीक्षणों से प्रमाणित किया जा सके। ऐसे परिणाम जो तथ्य, तर्क एवं आंकड़ों में लिपिबद्ध किये जा सकें। जिसका आधार, निरीक्षण, विश्लेषण, निश्चित प्रक्रिया पर आधारित व्यवस्थित आंकड़ों द्वारा संकलित एवं प्रमाणित हों। जिसका उपयोग, संचालन, नियंत्रण प्रायः व्यक्ति स्वयं अथवा अन्य कोई व्यक्ति द्वारा निश्चित विधि का पालन कर बिना किसी बाह्य भेदभाव कहीं भी कर सकता है। आध्यात्मिक विज्ञान का आधार होता है स्वावलम्बन अर्थात् स्वयं के द्वारा स्वयं का निरीक्षण, परीक्षण, नियंत्रण, संचालन। उसका परिणाम होता है आत्मानुभूति। भौतिक विज्ञान व्यक्ति को विशिष्ट बनाता है, जबकि आध्यात्मिक ज्ञान मानव को स्वाभाविक बनाता है। भौतिक विज्ञान प्रयोग में विश्वास करता है, जबकि अध्यात्म विज्ञान योग में। विज्ञान शक्ति की खोज करता है, जबकि अध्यात्म शान्ति की। भौतिक विज्ञान पर आधारित होती है- परावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ, जबकि प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित होती है- स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ।

क्या अहिंसक जीवन जीना संभव है?

मानव जीवन का उद्देश्य क्या ?

मानव जीवन का उद्देश्य क्या है? खाना-पीना, मौज-शौक करना, सो जाना और दूसरे दिन प्रातः उठकर पुनः उन्हीं कार्यों में लग जाना। यह सभी कार्य तो पशु भी करते हैं। ऐसे जीवन जीने वाले मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है? मानव में चेतना का सर्वाधिक विकास होने के कारण एक विशेषता होती है कि वह जानता भी है और समझता भी है कि वह क्या कर रहा है? क्यों कर रहा है? क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? मानव में ही चिन्तन, मनन की अपूर्व क्षमता, बुद्धि तथा विवेक होता है। जिससे भूतकाल की भूलों का सुधार और भविष्य के सुखद जीवन की कल्पना एवं सम्यक् पुरुषार्थ कर सकता है। अतः मानव से ही अपनी क्षमताओं के अनुरूप सही उद्देश्य एवं लक्ष्य के प्रति आगे बढ़ने की अपेक्षा रखी जा सकती है।

हीरे की पहचान करने वाला जौहरी होता है और पत्थर समझ दुरुपयोग करने वाला मूर्ख। हम स्वयं ईमानदारी पूर्वक निर्णय करें, हम अमूल्य मानव जीवन का उपयोग कैसे कर रहे हैं ?किसी भी जीव के प्राण अमूल्य होते हैं। पशु भले ही बेजुबान हो, बेजान नहीं होते। अतः जो प्राण हम दे नहीं सकते, उनको लेने का हमें कोई अधिकार नहीं है। सुख, शांति, प्रसन्नता एवं आनन्द चाहने वालों को अहिंसक जीवन शैली अपनाना मानवता एवं स्वास्थ्य की प्राथमिक आवश्यकता है।

मानव जीवन अमूल्य

मानव जीवन अमूल्य है। वस्तु जितनी मूल्यवान होती है, उसका उपयोग एवं उसकी सुरक्षा उसके अनुरूप करने वाला ही सच्चा ज्ञानी होता है। हमें चिन्तन करना होगा कि मानव जीवन के रूप में प्राप्त हम अपनी ऐसी अमूल्य क्षमताओं का अप्राथमिक, अनावश्यक कार्यों में दुरुपयोग और अपव्यय तो नहीं कर रहे हैं? जब तक अपनी क्षमताओं का सही उपयोग नहीं होगा, दुःख और रोग के कारणों को नहीं समझा जायेगा, तब तक हमारा जीवन अमर्यादित, अनियन्त्रित, लक्ष्य-हीन, स्वच्छन्द, असंयमित होने से स्थायी स्वास्थ्य एवं समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता।

जीवन क्या है ?

जन्म और मृत्यु के बीच की अवस्था का नाम जीवन है। जीवन को समझने से पूर्व जन्म और मृत्यु के कारणों को समझना आवश्यक होता है। जिसके कारण हमारा जीव विभिन्न योनियों में भ्रमण करता है। जन्म और मृत्यु क्यों? कब? कैसे और कहाँ होती है? उसका संचालन और नियन्त्रण कौन करता है? सभी की जीवन शैली, प्रज्ञा, सोच, विवेक, भावना, संस्कार, प्राथमिकताएँ, उद्देश्य, आवश्यकताएँ आयुष्य और मृत्यु का कारण और ढंग एक-सा क्यों नहीं होता? मृत्यु के पश्चात् अच्छे से अच्छे चिकित्सक का प्रयास और जीवन दायिनी समझी जाने वाली दवाईयाँ क्यों प्रभावहीन हो

जाती हैं? मृत्यु के पश्चात् शरीर के कलेवर को क्यों जलाया, दफनाया अथवा अन्य किसी विधि द्वारा समाप्त किया जाता है?

प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं से प्रश्न करना चाहिए कि- ''मैं कौन हूँ?, मैं कहाँ से आया हूँ?, मुझे मानव जन्म क्यों और कैसे मिला? मानव जीवन में भी सभी को एक-जैसी परिस्थितियाँ और वातावरण क्यों नहीं मिलते? सभी की आयु एक जैसी क्यों नहीं होती? किसी की बुद्धि, मन, इन्द्रियों और शरीर का पूर्ण विकास होता है तो कुछ जन्म से ही अविकसित, असन्तुलित, विकलांग अथवा अस्वस्थ क्यों होते हैं? जन्म के साथ परिवार, समाज, धर्म और संस्कृति, परिस्थितियाँ, कार्यक्षेत्र तथा जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न प्रसंगों का संयोग अथवा वियोग क्यों मिलता है?

आत्मा का महत्त्व

आत्मा को समझे बिना उसका मूल्य और महत्त्व कैसे पता लग सकता है?जीवन में उसकी उपेक्षा होना सम्भव है। आत्मा के विकार, मन,बुद्धि और वाणी को कैसे प्रभावित करते हैं? हमारे स्वास्थ्य को क्यों और कैसे बिगाड़ते हैं? आसानी से समझ में नहीं आ सकते। रोग के कारण बने रहने से पूर्ण स्वास्थ्य की भावना मात्र कल्पना बन कर रह जाती है। जिस प्रकार जड़ को सींचे बिना, मात्र फूल पत्ते को पानी पिलाने से वृक्ष सुरक्षित नहीं रह सकता, ठीक उसी प्रकार आत्मा को शुद्ध, पवित्र, विकार-मुक्त किए बिना शरीर, मन और मस्तिष्क स्वस्थ नहीं रह सकते। रोग की उत्पत्ति का मूल कारण आत्मा में कर्मों का विकार ही होते हैं। संचित कर्मों के अनुरूप व्यक्ति को शरीर, मन, बुद्धि, परिवार, समाज, क्षेत्र, पद, प्रतिष्ठा और भौतिक साधनों की उपलब्धि होती है। रोग की अभिव्यक्ति भी पहले भावों में अथवा विचारों में, तत्पश्चात् मन में, उसके बाद शरीर के अन्दर एवं अन्त में बाह्य लक्षणों के रूप में प्रकट होती है। व्यक्ति के हाथ में तो मात्र सम्यक् पुरुषार्थ करना ही होता है। परन्तु सभी पुरुषार्थ करने वालों को एक जैसा परिणाम क्यों नहीं मिलता? उसके पीछे पूर्व संचित कर्मों का ही प्रभाव होता है।

हिंसा हेतु वर्तमान परिस्थितियों को दोष देना उचित नहीं

जीवन जीना भी एक कला हैं। मानव जीवन का परम लक्ष्य क्या? उसको कैसे प्राप्त किया जावें? जीवन की प्राथमिकताएँ क्या हों? क्या वर्तमान परिस्थितियों में अहिंसा का पालन संभव है? जहाँ जीवन है वहाँ हिंसा अनिवार्य है। अल्पतम अतिआवश्यक लाचारी से होने वाली हिंसा के अलावा अनावश्यक हिंसा से हम कैसे बचें, यही चिन्तन का विषय है? ''जीओं और जीने दो'' पर आधारित जीवन ही मानवता का प्रतीक है। अपने स्वार्थ के लिये अन्य जीवों को कष्ट पहुँचाना पाश्विकता का लक्षण है। शराब की बोतल देखने अथवा पास में होने मात्र से नशा नहीं आता। नशा तो शराब के घूंट लेने से ही आता है। अतः हिंसा के लिये वर्तमान परिस्थितियों को दोष देना उचित नहीं। अहिंसक जीवन जीने के लिये किसी भी काल में परिस्थितियाँ शत-प्रतिशत अनुकूल नहीं रही। अहिंसक जीवन

जीने के लिये हमें हमारी प्रवृत्तियों को संयमित, नियमित, नियन्त्रित रखना होगा। मन, वचन, काया के अशुभ योगों से बचना होगा। जीव अजीव के भेद को जानकर जीवन में अहिंसा के महत्त्व को समझना होगा। जब उसका महत्त्व समझ में आ जायेगा तब हमारी सारी प्राथमिकताएँ अहिंसा-पालन के लिये हो जायेगी। फिर हमें कष्ट की अनुभूति नहीं होगी तथा हिंसक प्रवृत्तियों के प्रति हम सजग, सतर्क, सचेत, सावधान होकर बिना किसी को दोष दिये बचने लग जायेगें।

क्षमताओं का अधिकतम सदुपयोग मानव जीवन में आवश्यक

जन्म के साथ मृत्यु निश्चित है। इस जन्म-मरण के परिभ्रमण का कारण आत्मा पर आये कर्मों का आवरण होता है। मानव योनि ही एकमात्र ऐसी योनि है जिसमें इतनी क्षमता है कि आत्मा पर आये समस्त कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। नर से नारायण और आत्मा से परमात्मा बना जा सकता है। यही मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य है। जो इस लक्ष्य प्राप्ति में जितना-जितना आगे बढ़ता है, उसी का जीवन सार्थक होता है। इसके विपरीत जो अपनी क्षमताओं का दुरुपयोग अथवा अपव्यय करता है, उसका जीवन व्यर्थ होता है, अधोगति की तरफ ले जाने वाला होता है। विवेक बुद्धि की अल्पता और अज्ञान ही संसार परिभ्रमण के दो मुख्य कारण हैं, जिसके कारण मानव अपनी क्षमताओं को नहीं पहिचान पाता। क्या कोई व्यक्ति लाखों रूपयों के बदले अपने शरीर का कोई अंग, जैसे- आँख, कान, जीभ, नाक आदि बेचना चाहता है? कदापि नहीं। प्रश्न खड़ा होता है कि ऐसे अमूल्य मानव जीवन का ध्येय कहीं हम खाने-पीने, मौज-शौक अथवा परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारी तक ही सीमित समझने की भूल तो नहीं कर रहे हैं?जो वस्तु जितनी मूल्यवान होती हैं, उसका उपयोग कैसे करना? भौतिक जगत में हम जानते हैं। लाखों रुपये का वेतन लेने वाले मैनेजर से झाड़ू नहीं निकलवाते। महिलाओं में इतना विवेक होता है कि कीमती साड़ी पहिनकर, घर की सफाई अथवा भोजन नहीं बनाती। परन्तु क्या कभी हमने अपने जीवन के तौर-तरीके को देखा? करोड़ों रुपयों में अपने शरीर के अंग जैसे- आँख, कान, नाक को न बेचने वाले, उसका कितना सदुपयोग करते हैं? क्या हम हमारे मन और इन्द्रियों का सदुपयोग कर रहे हैं? कहीं मुँह से अपशब्द तो नहीं बोलते? निन्दा, चुगली, आरोप, प्रत्यारोप, असत्य तो नहीं बोलते? आँखों से काम-विकार बढ़ाने वाले दृश्यों को तो नहीं देखते। कान से निन्दा, विकथा अथवा राग-द्वेष बढ़ाने वाले शब्द तो नहीं सुनतें? यदि ऐसा करते हैं तो अपनी क्षमताओं का अवमूल्यन करना है। जिस वस्तु का दुरुपयोग अथवा अपव्यय किया जाता है, भविष्य में वह वस्तु पुनः सरलता से प्राप्त नहीं होती। उदाहरण के लिए आपने अपने नासमझ प्रिय बच्चे को जिद्द करने पर दो हजार रुपये का नोट दिया और यदि वह बच्चा उसे फाड़ देता है तो पुनः उस बच्चे को दो हजार रुपये का नोट आप नहीं देते, भले ही बच्चा कितना ही प्रिय क्यों न हो। ठीक उसी प्रकार मनुष्य जीवन का दुरूपयोग करने वाले को पुनः मानव जन्म नहीं मिलता। सम्यक् आचरण से ही मानव अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। जो उसकी

प्राप्ति हेतु सम्यक् पुरुषार्थ करते हैं उन्हीं का मानव जीवन प्राप्त करना अथवा जीना सफल होता है। क्या अहिंसक व्यक्ति ऐसा जीवन जी सकता हैं ? चिन्तन का विषय है।

अहिंसा के पालन हेतु जीव एवं अजीव का ज्ञान आवश्यक

अहिंसा का आधार हैं जीव या आत्मा अथवा चेतना। जब तक जीव और अजीव का ज्ञान नहीं होगा तब तक हिंसा से बचना कठिन होगा। जो हलन-चलन वाले जीव हमें दिखाई देते हैं, प्रायः हम उन्हीं को जीव मानते हैं। बहुत से ऐसे जीव इतने सूक्ष्म होते हैं जिन्हें हम अपने चर्म चक्षुओं से नहीं देख पाते। आज वैज्ञानिकों द्वारा भी वनस्पति में चेतना को स्वीकार किया जा चुका है। केप्टन स्कोर्सवी ने पानी की एक बूंद में सूक्ष्म दर्शक यंत्र से 36450 चलते फिरते जीवों को देखा। जिसका विवरण सिद्ध पदार्थ नामक ग्रन्थ (जो इलाहाबाद प्रेस से प्रकाशित हुआ हैं) में मिलता हैं, जो पानी में जीव की सत्यता को स्पष्ट करता हैं। अग्नि की सजीवता तो स्वयं सिद्ध है। उसमें प्रकाश और उष्णता का गुण है, जो सचेतन में होते हैं। अग्नि वायु के बिना जीवित नहीं रह सकती। लकड़ी, कोयला, पेट्रोल, डीजल, ईधन आदि आहार लेकर बढ़ती है। आहार के अभाव में अग्नि घटती हैं। ये सब उसकी सजीवता के लक्षण हैं। परन्तु प्रायः हम अग्नि, पानी, वनस्पति, पृथ्वी, हवा आदि एकेन्द्रिय जीवों में प्राण नहीं मानते। केवलज्ञानी, सर्वज्ञ अथवा त्रिकालदृष्टा ही सूक्ष्म से सूक्ष्मतर जीवों को देख सकते हैं। अतः उन्होंने जो अपने को पृथ्वी, पानी, वायु, अग्नि और वनस्पति जैसे एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीवों की विस्तृत जानकारी दी, उस पर श्रद्धा रख यथासंभव किसी भी जीव को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये।

व्यक्त चेतना ही जीव का आधार नहीं

जिस प्रकार मूर्च्छित व्यक्ति की बाह्य चेतना सुसुप्त होती है, परन्तु अन्तरंग चेतना, अनुभूति सुसुप्त नहीं होती। कोई मनुष्य जन्म से अन्धा, मूक, बधिर और हाथ पैरों से विकलांग है। यदि कोई व्यक्ति उसको कष्ट दे, तो भी वह उस पीड़ा को अभिव्यक्त नहीं कर सकता और न दुःखी होकर भाग सकता है अथवा अन्य प्रतिक्रिया ही कर सकता है। तब क्या ऐसा मान लिया जाए कि उसमें जीव नहीं हैं। जैसे वह व्यक्ति वाणी, चक्षु और गति के अभाव में पीड़ा का अनुभव करता है, वैसे ही पृथ्वी, पानी, वायु, अग्नि, वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीवों में, व्यक्त चेतना का अभाव होने के बावजूद भी प्राणों का स्पन्दन होता हैं। संवेदना अपेक्षाकृत अधिक होती है। उनमें भी अनुभव चेतना विद्यमान होती है। अतः कष्ट की अनुभूति होती है। एकेन्द्रिय जीवों की चेतना मूर्च्छित रहती है, परन्तु वे अन्तरंग चेतना से शून्य नहीं होते। इसी कारण जैन संत मुनिराज सचित एकेन्द्रिय का स्पर्श तक नहीं करते। वैदिक परम्परा में पृथ्वी, पानी, हवा,अग्नि और वनस्पति में देवत्व का वास माना गया है। भवन निर्माण अथवा ग्रहप्रवेश के समय भूमि-पूजन, विवाह, शादी के प्रसंगों पर अग्नि की साक्षी और उदित सूर्य को नमस्कार, हथैली में पानी की साक्षी से संकल्प लेने की परम्परा तथा पीपल, तुलसी,

नीम आदि के पूजन के पीछे यही लक्ष्य रहा हुआ है। चीनी पंच तत्व के सिद्धान्त एवम् प्राकृतिक चिकित्सा में पंच तत्त्वों का नामकरण उसी के आधार पर किया गया है। परन्तु पृथ्वी, पानी, वायु, अग्नि और वनस्पति में चेतना का ज्ञान न होने से अहिंसक कहलाने वाले भी, इनका दुरुपयोग करते तनिक भी संकोच नहीं करते। फलतः सारा संसार आज पर्यावरण एवं प्रदुषण की समस्या से परेशान है।

आत्मविकास में बाधक हिंसा

जिस प्रकार अहिंसक व्यक्ति में बचपन से ही करुणा, दया के संस्कार होने से कोई कितना ही प्रलोभन दें, उसकी आत्मा एक चींटी को मारने की भी अनुमति नहीं देती। फिर भी न चाहते हुए भी उठते-बैठते, चलते-फिरते, हिंसा हो ही जाती है। उसी प्रकार जब जीव और अजीव का भेद समझ में आ जायेगा तब प्रज्ञावान, विवेकशील व्यक्ति अनावश्यक हिंसा से यथासंभव बचने का प्रयास करेगा। जहाँ जीवन है, वहाँ हिंसा अनिवार्य हैं। अतः आजकल ऐसी मान्यता बलवती होती जा रही है कि बिना हिंसा जीवन चल ही नहीं सकता। इस शंका का समाधान करते हुए प्रभु महावीर ने कहा-

जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयंमासे, जयं सए ।
जयं भुजंतो, भासंतो,पावकम्मं न बंधइ ।।

अर्थात् यतनापूर्वक चलने, उठने, बैठने एवं सोने अथवा जीवन के लिये अन्य अतिआवश्यक प्रवृत्तियाँ करने से पाप कर्मों का बन्ध नहीं होता अर्थात् हिंसा का दोष नहीं लगता। अतः जीवन की सभी प्रवृत्तियाँ विवेकपूर्ण हो, ताकि प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, जाने-अनजाने, किसी भी जीव को कष्ट पहुँचाने की मन में भावना न हो।

हिंसा की अनुमोदना से बचें

हिंसक प्रवृत्तियों से यथासंभव बचने का ध्यान रखा जावे। हिंसा का भाव आते समय हमारे अन्दर लेश्याओं (भावों) की क्या स्थिति होती है, वह बहुत महत्वपूर्ण है। जैन आगमों में इस संदर्भ में तंदुल मच्छ का एक दृष्टान्त आता है, जो समुद्र में भीमकाय मगरमच्छ की आंखों के भौंहे पर बैठा चावल के दाने जितना छोटा मगरमच्छ होता है। जब वह देखता है कि मगरमच्छ की श्वास के साथ सैंकड़ों मच्छलियाँ उसके पेट में जा रही है और श्वास छोड़ने के साथ वापस बाहर आ रही है। तंदुल मच्छ विचार करता है कि यह कैसा आलसी मगरमच्छ हैं, जो मुँह में आये शिकार को भी पुनः गवां देता है। इसकी जगह अगर मैं होता तो एक मछली को जीवित बाहर नहीं आने देता। उसकी ऐसी भावना मात्र ही उसे अधोगति का पथिक बना देती हैं। हालांकि प्रत्यक्ष रूप से हिंसा में वह तनिक भी भागीदार नहीं होता। आजकल हम बिना प्रयोजन ऐसी पाप प्रवृत्तियों की प्रेरणा देते हैं अथवा अनुमोदना करते हैं, जिससे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से उनसे होने वाली हिंसा में भागीदार बनते हैं। लोक लाज और व्यवहार निभाने के नाम पर किसी आलीशान मकान की बिना पूछे तारीफ करना,

विवाह-शादियों के उपलक्ष्य में आयोजित भोजों एवम् कार्यक्रमों की बिना पूछे सराहना करना, शादी के प्रसंगों पर प्रत्येक परिचित को शुभ संदेश भिजवाना, जैसी अनेक प्रवृतियाँ हैं, जिसके पीछे अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है। जिन पर यदि हम प्रतिक्रिया न करें, अनासक्त रहें तो भी चल सकता है। हम परोक्ष हिंसा की अनुमोदना से सहज बच सकते हैं।

जीवन में हिंसा के विविध रूप

हिंसा को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहली द्रव्य हिंसा- जिसका मतलब किसी जीव को कष्ट पहुँचाना। जबकि दूसरी भाव हिंसा अर्थात् किसी जीव को कष्ट पहुँचाने की भावना होना, भले ही प्रत्यक्ष रूप से द्रव्य हिंसा न भी हो। भाव हिंसा का सम्बन्ध व्यक्ति के स्वयं के नियन्त्रण में होता है। अतः आसानी से बचा जा सकता है। हिंसा तीन करण और तीन योग से होती है। अर्थात् स्वयं करना, दूसरों से करवाना अथवा हिंसक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना। तीन योग हैं-मन, वचन और काया। इस प्रकार कुल 49 प्रकार से द्रव्य एवं भाव हिंसा की जा सकती है। जैसे हिंसा मन से करना, वचन से करना, काया से इत्यादि। अतः अहिंसक जीवन जीने वालों को यथासंभव हिंसा से बचना चाहिये। हिंसा का सम्बन्ध चेतना के विकास से भी होता है। जितनी ज्यादा चेतना का विकास होगा, उनकीं हिंसा करते समय भावों में उतनी ही क्रूरता अधिक होगी। उसकी प्रतिक्रिया का सहज अनुभव भी किया जा सकता है। इसलिये जितना कर्मों का बन्ध पंचेन्द्रिय की हिंसा से होता हैं, उतना एकेन्द्रिय की हिंसा से नहीं होता।

खानपान में बढ़ती हिंसा

आज हमारे ऊपर चारों तरफ से आक्रमण हो रहा है। जन-साधारण का हिंसा के दोषों के प्रति अज्ञान होने से खानपान में माँसाहार, अण्डों, मछलियों का प्रत्यक्ष उपयोग दिनों-दिन बढ़ रहा है। नमक में मिलाया जाने वाला अधिकांश आयोडीन बूचड़खानों से प्राप्त जानवरों के थायरोड ग्रन्थि का स्राव होता है, जिसको स्वार्थी तत्त्वों के प्रभाव से सरकार ने नमक में मिलाना अनिवार्य बना दिया है। बाजार में मिलने वाले तैयार खाद्यान्नों को शक्तिवर्धक बनाने के नाम पर मछली को सुखाकर उसका बना पाउडर आटे में बेहिचक मिलाया जा रहा है। ब्रेड, बिस्किट, आईसक्रीम आदि को स्वादिष्ट बनाने के लिये अण्डों का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा हैं। घी, तेल में जानवरों की चर्बी मिलाना आम बात होती जा रही है। चांदी के बरक बनाने के पीछे भी अप्रत्यक्ष हिंसा को प्रोत्साहन मिल रहा है। मिलावट और अनैतिकता के इस युग में मानव की स्वार्थी मनोवृत्ति एवं अज्ञान से करणीय-अकरणीय का विवेक समाप्त होता जा रहा है। हम जो खा रहे हैं अथवा जो खिलाया जा रहा है, वे पदार्थ कैसे बनते हैं? उनमें मिलाये जाने वाले अवयव कितने शुद्ध हैं? उस तरफ छानबीन की प्रवृति न होने, भ्रामक विज्ञापन के प्रभाव तथा घर पर अच्छे पवित्र खाद्यान्न बनाने के आलस्य ने घर से बाहर खाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। होटलों का उद्देश्य भोजन की सात्विकता पर कम, स्वाद पर

ज्यादा हो गया हैं। हिंसा द्वारा निर्मित बनी-बनाई चीजों को खाते अथवा खरीदते समय गवेषणा की प्रवृत्ति न होने से बूचड़खानों के उत्पादकों की आवश्यकता दिनों-दिन बढ़ती जा रही हैं। नित्य नये-नये बूचड़खाने क्यों खुल रहे हैं? स्वास्थ्य विभाग खाने की सात्विकता के गुणों की तरफ पूर्ण उपेक्षित है। उल्टा पूर्वाग्रह के कारण पौष्टिकता के झूठे दावों के नाम पर ऐसे खाद्यान्नों को प्रोत्साहन देने के कार्य में, आग में घी डालने का कार्य कर रहा है। अत: अहिंसक जीवन जीने वालों को बाजार से जीवनोपयोगी वस्तुएँ खरीदते समय जांच करनी चाहिए कि कहीं उसमें जानवरों के अवयवों की मिलावट तो नहीं है। दूसरी बात बाहर से बनी खाद्य वस्तुओं को खाने की प्रवृत्ति एवं होटलों में खाने की प्रवृत्ति यथासंभव छोड़नी चाहिये, ताकि अज्ञानवश न चाहते हुए भी हम हिंसक प्रवृत्तियों में भागीदार न बन जावें। तीसरी बात रात्रि में भोजन बनाते अथवा खाते समय बहुत ध्यान रखते हुए भी जीव उसमें मिल जाते हैं, जिससे भोजन अभक्ष्य बन जाता है। अत: अहिंसक व्यक्ति को रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिये।

भोजन अहिंसक होना चाहिए

भोजन जीवन का आधार है। आधार हमेशा मजबूत होना चाहिए न कि मजबूरी, लापरवाही, अज्ञान अथवा अविवेकपूर्ण आचरण का। यह आवश्यक भी है और हमारे लिए चेतावनी भी है। हमें ऐसा आहार करना चाहिए जो पूर्णत: अहिंसक हो, अर्थात् किसी भी चेतनाशील जीव की हिंसा करके अथवा कष्ट देकर यथा संभव उपलब्ध न किया गया हो। प्रकृति का यह सनातन सिद्धान्त है कि किसी जीव को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से दु:ख, पीड़ा, कष्ट पहुँचाने वाले को उसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है।

निर्दोषों का रक्त बहाना, मानवता का मान नहीं।
हिन्दू, मुस्लिम याद तुम्हें, क्या गीता और कुरान नहीं ?

क्या बुद्धिमान व्यक्ति मांसाहारी हो सकता है ?

बुद्धिमान कौन? अपने स्वास्थ्य की रक्षा करने वाला या उपेक्षा करने वाला? अपनी क्षमताओं का सदुपयोग करने वाला अथवा दुरुपयोग करने वाला या अपव्यय करने वाला? दयालु या क्रूर, स्वार्थी अथवा परमार्थी? अहिंसक अथवा हिंसक? अन्य प्राणियों के प्रति मैत्री और प्रेम का आचरण करने वाला या द्वेष और घृणा फैलाने वाला? जीओ और जीने दो के सिद्धान्तों को मानने वाला या दूसरों को स्वार्थ हेतु कष्ट देने वाला, सताने वाला या नष्ट करने वाला? उपर्युक्त मापदण्डों के आधार पर ही मनुष्य को सभ्य, सजग, सदाचारी और बुद्धिमान अथवा असभ्य, असजग, दुराचारी और मूर्ख समझा जाता है। अपने-अपने खाने की आदतों के आधार पर हम स्वयं निर्णय करें कि हमारा खान-पान कितना बुद्धिमत्ता पूर्ण हैं?

सारांश यही है कि मांसाहार स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक, आर्थिक दृष्टि से महंगा, आध्यात्मिक दृष्टि से नीच गति में ले जाने वाला, मानवीय गुणों का नाश करने वाला, पर्यावरण की दृष्टि से प्रकृति में असंतुलन पैदा करने वाला तथा न्याय की दृष्टि से अन्याय का पोषण करने वाला है। अत: जो मांसाहार करते हैं, करवाते हैं अथवा करने वालों को अच्छा समझते हैं, वे सभी असजग हैं। असंस्कारित है। अमानवीय हैं। अपनी रसनेन्द्रिय के गुलाम, स्वाद लोलुप हैं। पराधीन एवं परावलम्बी हैं। उदासीन हैं। भ्रमित हैं। स्वयं के प्रति भी ईमानदार नहीं हैं। वास्तव में जो बुराई को जानते, मानते हुए भी न स्वीकारें, उस व्यक्ति, समाज और सरकार को कैसे बुद्धिमान समझा जायें?

सर्वश्रेष्ठ भोजन कैसा?

लाखों रूपये में भी अपने शरीर के किसी अंग को न बेचने वाला, अपने स्वाद पूर्ति के लिये बेचारे बेजुबान, बेबश, बेसहारा प्राणी जिनका रोम-रोम मनुष्य जाति के लिए समर्पित होता है, जिसे खिलाना चाहिये, उसे ही खाया जा रहा है। ऐसा मानव आकृति से भले ही मनुष्य हो, परन्तु प्रकृति से तो वह राक्षसों को भी लजाने वाला बनता जा रहा है।

जो भोजन शरीर को स्वस्थ, मन को मजबूत और आत्मा को पवित्र, शुद्ध एवं निर्मल बनाएँ तथा मानव में मानवीय गुणों की अभिवृद्धि में सहायक होता है, वहीं सात्त्विक अहिंसक आहार मानव के लिए सर्वश्रेष्ठ होता है। ऐसे आहार का चयन करने वाला ही करुणाशील होता है।

अगर कोई मनुष्य को खा जाता है उसको नर भक्षी कहा जाता है। ऐसे जानवरों को लोग जिन्दा नहीं रहने देतें। परन्तु मांसाहारी जीवन पर्यन्त कितने प्राणियों की हत्या कर खाता है, फिर भी ऐसे मानव को सभ्य, बुद्धिमान मनुष्य मानना कदापि न्याय संगत नहीं।

व्यवसाय और हिंसा

हिंसा का दूसरा बड़ा क्षेत्र है व्यवसाय। हम अपनी आय उपार्जन के लिये ऐसे व्यवसायों से बचें जो एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय की हिंसा पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से आधारित हों। शास्त्रों में श्रावकों को ऐसे व्यापार का पूर्ण निषेध करने का परामर्श दिया गया है। ऐसे 15 प्रकार के व्यवसायों की कर्मादान के रूप में विस्तृत व्याख्या की गई हैं। जैसे बूचड़खानों का संचालन, एवं सौन्दर्य प्रसाधन बनाने वाले हिंसा पर आधारित दवा, उद्योग और व्यापार, विष का व्यापार, जंगल कटवाना, मछली उत्पादन, पॉल्ट्रीफार्म, हाथी दाँत का धन्धा, रेशम, कस्तूरी, जीवित जानवरों को मारकर प्राप्त चमड़े पर आधारित चर्म उद्योग, चाँदी के वर्क बनाना अथवा ऐसे अन्य उद्योग अथवा व्यापार जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष हिंसा को प्रोत्साहन देते हों।

आजकल अधिकांश कम्पनियाँ अपने व्यापार के लिये धन प्राप्त करने के लिए शेयर बेचती है। शेयर खरीदते समय इस बात की गवेषणा करनी चाहिये कि हमारा धन ऐसी कम्पनियों में इन्वेस्ट **(Invest)** न हो, जिसके उत्पादन में जीवों पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष क्रूरता अथवा अत्याचार होते हों एवं

जिस कम्पनी के उत्पादों के परीक्षणों हेतु जीवों पर निर्दयता, क्रूरता की जाती हो। प्रायः अधिकांश सौन्दर्य प्रसाधन के सामान, अंग्रेजी दवाईयाँ, चमड़े पर आधारित जूतों, बेल्ट, फर के कोट अथवा टोपियाँ बनाने वाले, अथवा इसी प्रकार की अन्य कम्पनियों के शेयर खरीदने का मतलब, ऐसे उद्योगों में अपनी भागीदारी रखना। आज इस तथ्य की तरफ अहिंसक समाज पूर्ण उपेक्षित है और उनका **Investment** ऐसी कम्पनियों के शेयर खरीदने में होने से हिंसा पर आधारित धन्धे तीव्र गति से बढ़ रहे हैं।

शिक्षा और चिकित्सा में हिंसा

आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान की जानकारी हेतु करोड़ों जानवरों का प्रतिदिन विच्छेदन किया जाता है। दवाईयों के निर्माण और उनके परीक्षण हेतु जीव-जन्तुओं को निर्दयता, क्रूरतापूर्वक यातना दी जाती है। किसी को दुःख देकर सुख और शांति कैसे मिल सकती है? यह तो पशुता एवं अनैतिकता का लक्षण है। जैसा करेंगे वैसा फल मिलेगा, यह कर्म का सनातन सिद्धान्त है। प्रकृति के न्याय में देर हो सकती है परन्तु अन्धेर नहीं। किसी भी जीव को स्वस्थ रखने में दिया गया सहयोग उत्कृष्ट सेवा होती है। संवेदना जागे बिना सच्ची सेवा नहीं हो सकती। आधुनिक चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मूक, बेबस, असहाय जीवों पर विभिन्न प्रकार के प्राणघातक प्रयोग किए जाते हैं। लकड़ी में आग होती है। क्या उसको देखा जा सकता है? ठीक उसी प्रकार जानवरों के विच्छेदन से शरीर के बनावट की जानकारी तो हो सकती है, परन्तु चेतना की उपेक्षा करने वाला ज्ञान कैसे पूर्ण, वास्तविक और सच्चा हो सकता है?

दवाइयों के निर्माण हेतु जीवों के अवयवों का बिना किसी परहेज उपयोग होता है। औषधियों के परीक्षण हेतु जीवों को यातनाएँ दी जाती है। उनकी मान्यतानुसार मनुष्य के लिए सभी अपराध क्षम्य होते हैं। क्या आपने कभी सोचा आपके दुःख, दर्द,रोग अथवा पीड़ा का क्या कारण है? यह तो आपके ही किए की प्रतिक्रिया है। ''क्रिया की प्रतिक्रिया'' तो इस सृष्टि का सनातन सिद्धान्त है। हमने अतीत जीवन में या जन्मों में किसी को मारा है, पीटा है, सताया है, रूलाया है, प्रताड़ित किया है, उसी की सजा के रूप में रोग आते है। स्पष्ट है रोग का कारण हमारी क्रूरता, कठोरता, कामुकता से जुड़ा हुआ है। मस्तिष्क में अविवेक एवं प्राणिमात्र के प्रति अशुभ चिन्तन सबसे बड़ा ब्रेन हेमरेज है तथा हृदय में दया, करूणा नहीं होना सबसे बड़ी हार्ट ट्रबल है। अपराध करने, करवाने और करने में सहयोग देने वाले प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में अपराधी होते हैं।

वैज्ञानिक चिकित्सा कौनसी?

आजकल आधुनिक चिकित्सा के अतिरिक्त अन्य सभी चिकित्सा पद्धतियों को वैकल्पिक चिकित्सा के रूप में मान्यता प्राप्त है, उसमें कितनी सत्यता है प्रत्येक बुद्धिमान, सजग, सम्यक चिन्तनशील व्यक्ति के लिए चिंतन का प्रश्न है।

वैज्ञानिक चिकित्सा कौनसी ? स्वावलम्बी या परावलम्बी, सहज अथवा दुर्लभ, सरल अथवा कठिन, सस्ती अथवा महंगी। प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित प्राकृतिक या नित्य बदलते मापदण्डों वाली अप्राकृतिक, अहिंसक अथवा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा, निर्दयता, क्रूरता को बढ़ावा देने वाली। दुष्प्रभावों से रहित अथवा दुष्प्रभावों वाली। शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमता बढ़ाने वाली या कम करने वाली। रोग का स्थायी उपचार करने वाली अथवा राहत पहुंचाने वाली। सारे शरीर को एक इकाई मानकर उपचार करने वाली अथवा शरीर का टुकड़ों-टुकड़ों के सिद्धान्त पर उपचार करने वाली।

प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों पर चिन्तन आवश्यक

एक्युप्रेशर, सुजोक, शिवाम्बु, चुम्बक, योग, स्वर, सूर्य किरण एवं रंग, ऊर्जा संतुलन, नाभि, भोजन, जल, प्राणायाम, मुद्राएँ, मेथी, तेल, हास्य, रेकी, दूरस्थ,प्राणिक, डाउजिंग जैसे अनेक पूर्णतः प्रभावशाली एवं दुष्प्रभावों से रहित अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों की अज्ञानवश उपेक्षा कर हिंसा पर आधारित चिकित्सा पद्धतियों को प्राथमिकता देना अहिंसक आचरण करने वाले व्यक्ति के लिए कितना उचित है? चिंतन का प्रश्न है। स्वास्थ्य की दृष्टि से रोग पैदा करने वाले कारणों से बचना, रोग पैदा न हों, ऐसी जीवन शैली जीना तथा जो रोग पहले से जमें हुए हों, उनका विरेचन अथवा सफाई आवश्यक है।

अहिंसक जीवन जीने वालों का दायित्व

अहिंसक आचरण करने वाला ऐसी हिंसक दवाओं का उपयोग कैसे कर सकता है? रोग का संबंध वेदनीय कर्म से होता है और मृत्यु का कारण आयुष्य कर्म का क्षय होना, परन्तु मृत्यु का कारण एकमात्र रोग को मानने की भ्रामक धारणा के कारण, स्वस्थ होने के लिये ऐसी हिंसक दवाओं के सेवन की प्रवृत्ति, सूक्ष्म रूप से अहिंसा का पालन करने वाले, संयमी संत-सतियों में भी तीव्र गति से बढ़ रही है। दवा में क्या अवयव हैं, उसके निर्माण और परीक्षण में होने वाली हिंसा की जांच तक नहीं करते? 42 दोष टाल कर आहार लेने वाले भी बिना दवा उपचार की प्रभावशाली विभिन्न अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों को छोड़, परावलम्बी, पंचेन्द्रियों की हिंसा पर आधारित चिकित्सा पद्धतियों की तरफ आकर्षित हो रहे हैं जो गहन चिंता का विषय हैं।

हिंसक प्रवृत्तियों के प्रति मौन कितना उचित?

हिंसा आमोद-प्रमोद के नाम पर भी होती है, जैसे- शिकार खेलना, जानवरों को लड़ाना, मारना अथवा कष्ट पहुँचाने में सहयोग देना, उनकी पूँछ पर पटाखें फोड़ना, चिड़ियाघर अथवा सर्कस के लिये उनको बन्धक बनाना आदि के रूप में हो, या धार्मिक अन्धविश्वास के कारण देवी-देवताओं पर बलि के रूप में हो अथवा बकरा ईद जैसे प्रसंगों पर कुबार्नी के रूप में ही हो, जहरीलें साँप, बिच्छू आदि जीवों को भय के कारण बिना अपराध मारना, टिड्डी, कीट, पंतगों, चूहों को हानि के भय से

मारना, अहिंसक आचरण करने वालों के लिये कदापि उचित नहीं। खान-पान, चिकित्सा, व्यवसाय, सौन्दर्य- प्रसाधन, शिक्षा, मनोरंजन अथवा अन्य किसी भी कारण से हिंसा हो, हमें यथासंभव प्रत्यक्ष-परोक्ष, अनावश्यक हिंसा से स्वयं को बचाना चाहिए। अहिंसक के मन में जीवों को न केवल कष्ट पहुँचाने अथवा मारने के भाव ही चाहिये, अपितु उनके प्रति करुणा, मैत्री का भाव आवश्यक है। यद्यपि अहिंसक बहुत-सी हिंसा में प्रत्यक्ष भागीदार नहीं होता, परन्तु यदि सामर्थ्य होते हुए भी उनका मौन अन्य लोगों को यदि हिंसा हेतु नहीं रोकता है तो ऐसे आचरण को कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। अतः अहिंसा का पालन करने वालों को अपनी क्षमतानुसार जनसाधारण को अहिंसक विकल्प हेतु भी जन-जागरण करना चाहिये। हिंसा अत्याचार हैं। अत्याचार को क्षमता होते हुए भी सहन करने वाले अत्याचार करने के समान दोषी होते हैं।

अहिंसक जीवन हेतु अनावश्यक हिंसा के त्याग का संकल्प आवश्यक

अहिंसक व्यक्ति को प्रत्येक प्रवृत्ति करते समय अपने आपसे पूछना होगा कि वह प्रवृत्ति क्यों आवश्यक हैं? क्या उसके बिना बिल्कुल कार्य नहीं चल सकता? उस प्रवृत्ति से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनावश्यक हिंसा को तो प्रोत्साहन नहीं मिल रहा हैं? क्या उसका कोई अहिंसक विकल्प हैं? विकल्प न होने की स्थिति में भी उसका लक्ष्य जीवन के लिये अनिवार्य अल्पतम हिंसा का ही होता है। वह अपनी आवश्यकताओं का निर्धारण करते समय अहिंसक जीवन शैली को ही सर्वोच्च प्राथमिकता देता है। अनिवार्य जीवनोपयोगी हिंसा को सीमित करने के लिये भी उसे द्रव्य, क्षेत्र, काल के अनुरूप मर्यादा करनी चाहिये, ताकि उन द्रव्यों के अलावा अन्य द्रव्यों एवं क्षेत्र से बाहर रहने वाले जीव तथा जिस काल तक के लिये संकल्प लिया गया तब तक छः काया के जीवों को उसकी तरफ से पूर्ण निर्भयता मिल सकें। परन्तु आजकल अधिकांश व्यक्ति प्रायः व्रत, नियम अथवा संकल्प नहीं लेना चाहते। जिस प्रकार अपने अधिकार वाले खाली मकान का भी किराया देना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार बिना संकल्प हम उस अप्रत्यक्ष हिंसा के सम्पूर्ण दोषों से नहीं बच सकते।

क्या हम अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग हैं?

कुछ बातें हमारे नियन्त्रण में होती है। हमारे स्वविवेक एवं सम्यक् चिन्तन पर निर्भर करती हैं, जबकि कुछ बातों पर हमारा पूर्ण नियन्त्रण नहीं होता। जैसे नगर निगम द्वारा उपलब्ध कराया गया जल, शहरों में ध्वनि प्रदूषण एवं पर्यावरण से दूषित वातावरण की स्थिति, रसायनिक खाद और कीटनाशकों से प्रभावित खाद्य सामग्री, बाजार में उपलब्ध खाद्य पदार्थों में शुद्धता अर्थात मिलावट न होना, टी.वी. और अन्य संचार माध्यमों पर उपभोक्ताओं को आकर्षित करने वाले मायावी, भ्रामक हानिकारक पदार्थों का खुलम-खुला प्रचार इत्यादि पर प्रायः हमारा पूर्ण नियन्त्रण नहीं होता। परिणामस्वरूप अज्ञानवश आज का इन्सान न खाने की चीजें खा रहा है। न पीने की चीजें पी रहा है। भूख के बिना भी खा रहा है। भूख से ज्यादा भी खा रहा है। अकाल यानि रात में भी खा रहा है।

अपाच्य और अभक्ष्य भी खा रहा है। फिर भी अपने आपको बुद्धिमान मान रहा है। अतः अपने आपको स्वस्थ रखने की कामना रखने वालों को अपने से नियन्त्रित प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करना चाहिये। जैसे क्या खाना और क्या नहीं खाना? कब खाना और कब नहीं खाना और क्यों ?कैसे खाना खाना और कैसे नहीं खाना? कहाँ खाना और कहाँ नहीं खाना? खाना कैसे बनाना? कैसे पकाना? कैसे खिलाना इत्यादि? क्या भोजन सुपाच्य है? पवित्र है या अपवित्र, मौसम, वातावरण और शरीर के अनुकूल है या प्रतिकूल इत्यादि बातों पर हमारा नियन्त्रण संभव होता है। जो व्यक्ति उपरोक्त बातों के प्रति जितना अधिक सजग बन आचरण करेगा, वह व्यक्ति ही अपेक्षाकृत स्वस्थ जीवन जीता है।

अहिंसक जीवन जीना असंभव नहीं संभव हैं

अहिंसक व्यक्ति को अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति करते समय न केवल हिंसा से बचना चाहिये, अपितु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उनके अविवेक के कारण, दूसरों पर आश्रित परावलम्बी जीवन जीने के कारण व्यर्थ जीवों की उत्पत्ति न हो और उनकी हिंसा के दोष से हम न बच सकें। जैसे घर में झूठे बर्तन पुनः तुरन्त सफाई न करना, पानी न छानना, गन्दगी और शारीरिक मल का विसर्जन करते समय स्थान का ध्यान न रखना, रात-दिन उपयोग में आने वाली वस्तुओं की बराबर देखभाल न करना, जिससे जीवों की उत्पति हो। अहिंसा का पालन करने वालों को स्वावलम्बी बनना पड़ेगा। अनावश्यक लोक-व्यवहारों से बचकर परिचय घटाना होगा और जीवन की आवश्यकताओं को अल्पतम करना होगा। मन, वचन और काया के अशुभ योगों से अपने को अलग रखना होगा। उनका जीवन संयमित, नियमित, परिमित, सजग, विवेकपूर्ण होना चाहिये। उन्हें प्रतिक्षण चिन्तन करना चाहिये कि उनकी प्रवृत्तियाँ हिंसा को प्रोत्साहन तो नहीं दे रही है। जीवन के लिये होने वाली अल्पतम हिंसा के लिये भी उनकी लाचारी होनी चाहिये न कि उपेक्षा। ऐसे दृढ़ मनोबली का जीवन निश्चित रूप से अहिंसक ही होता हैं। जितनी-जितनी इन बातों की पालना होगी, उतना-उतना अहिंसक जीवन बनता जायेगा। अतः अहिंसक जीवन जीना कठिन अवश्य हैं, असंभव नहीं।

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ क्यों अधिक प्रभावशाली ?

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों में बिना किसी जीव को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कष्ट पहुँचाए पूर्णतः अहिंसक एवं दुष्प्रभावों से रहित सहजता से उपलब्ध साधनों का सहयोग लिया जाता है। इसमें शरीर, मन और आत्मा में जो जितना महत्त्वपूर्ण होता है, उसको उसकी क्षमता के अनुरूप महत्त्व एवं प्राथमिकता दी जाती है। प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों की उपेक्षा न हो, इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है। शरीर विज्ञान के विशेष जानकारी की आवश्यकता नहीं होती है। ये उपचार सहज, सरल, सस्ते, सर्वत्र उपलब्ध होने से व्यक्ति को सजग, स्वतंत्र, स्वावलम्बी एवं सम्यक् सोच वाला बनाते हैं। ये चिकित्सा पद्धतियाँ हिंसा पर नहीं अहिंसा पर, विषमता पर नहीं समता पर, साधनों पर नहीं साधना पर, दूसरों पर नहीं स्वयं पर, क्षणिक राहत पर नहीं, अपितु अंतिम प्रभावशाली स्थायी परिणामों पर आधारित होती हैं। रोग के लक्षणों की अपेक्षा रोग के मूल कारणों को नष्ट करती है, जो शरीर के साथ-साथ मन एवं आत्मा के विकारों को दूर करने में सक्षम होती है। ये पद्धतियाँ प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण अधिक प्रभावशाली, वैज्ञानिक, मौलिक एवं निर्दोष होती हैं।

अच्छे स्वास्थ्य हेतु प्राणों का संयम आवश्यक

शुद्धात्मा- अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्द का स्रोत होती है तथा उस अवस्था में स्वास्थ्य की कोई समस्या नहीं होती। जितनी-जितनी उसकी मलिनता, उतनी-उतनी स्वास्थ्य की समस्या। परन्तु जब वह कर्मो के आवरणों से आच्छादित हो मलिन अथवा अपवित्र बन जाती है तो कर्मो के आवरण के घनत्व के अनुसार उसकी सारी शक्तियाँ सीमित हो जाती है।

प्राण ऊर्जा और ऊर्जा के स्रोत

जब मानव का जीव गर्भ में आता है तो उसे अपने कर्मो के अनुसार आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन रूपी छः मूल ऊर्जा के स्रोत अर्थात् पर्याप्तियाँ **(Biopotential Energy Source)** प्राप्त होते हैं। प्रत्येक पर्याप्ति चुम्बक की भांति अपने-अपने गुणों के अनुसार पुद्गलों को आकर्षित कर मानव शरीर का विकास करती है। जिन्हें ये शक्तियाँ पूर्ण रूप से प्राप्त होती है, उनका सम्पूर्ण एवं संतुलित विकास होता है तथा जिन्हें ये पर्याप्तियाँ आंशिक रूप में प्राप्त होती है उनका विकास आंशिक ही होता है।

मानव को प्राप्त 10 प्राण

चेतना के विकास में इन्द्रियों का स्वतंत्र अस्तित्व होता है। प्रायः अन्य चिकित्सा वैज्ञानिकों ने उनकी शरीर के एक अवयव तक ही कल्पना की। उनका सम्बन्ध पंच तत्त्वों में से किसी तत्त्व अथवा अंग तक ही सीमित कर दिया। ये जीवनी शक्तियाँ कार्य के अनुसार मुख्य रूप से दस भागों में रुपान्तरित हो मानव की समस्त गतिविधियों का संचालन करती है। जिन्हें प्राण भी कहते हैं। प्राण जीवन को शक्ति प्रदान करते हैं। प्रत्येक प्राण अपने लिये आवश्यक पुद्गलों को आसपास के वातावरण से ग्रहण कर अपना-अपना कार्य कर सकते हैं।

श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण-	जिससे सुनने योग्य पुद्गलों को आकर्षित करने की शक्ति प्राप्त होती है।			
चक्षुइन्द्रिय बल प्राण-	जिससे देखने	,,	,,	,,
घ्राणेन्द्रिय बल प्राण-	जिससे गंध लेने	,,	,,	,,
रसनेन्द्रिय बल प्राण-	जिससे स्वाद	,,	,,	,,
स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण-	जिससे स्पर्श	,,	,,	,,
श्वासोच्छ्वास बल प्राण-	जिससे श्वसन योग्य	,,	,,	,,
मन बल प्राण-	जिससे मनोवर्गणा	,,	,,	,,
वचन बल प्राण-	जिससे भाषा वर्गणा	,,	,,	,,
काय बल प्राण-	जिससे हलन-चलन	,,	,,	,,
आयुष्य बल प्राण-	जिसके कारण जीव निश्चित अवधि तक किसी शरीर में रह सकता है।			

सारी प्राण शक्तियाँ आपसी सहयोग और समन्वय से कार्य करती है, परन्तु एक दूसरे का कार्य नहीं कर सकती। आँख सुन नहीं सकती, कान बोल नहीं सकता, नाक देख नहीं सकता इत्यादि। सबमें आयुष्य बल प्राण मुख्य होता है तथा उसके समाप्त होते ही अन्य प्राण प्रभावहीन हो जाते हैं। आयुष्य बल प्राण का प्रमुख सहयोगी श्वासोच्छ्वास बल प्राण होता है।

प्राण ऊर्जा का जितना सूक्ष्म एवं तर्कसंगत विश्लेषण महावीर दर्शन में हैं उतना आधुनिक चिकित्सा पद्धति में भी नहीं किया गया। इसी कारण आँख, नाक, कान आदि जड़ उपकरणों की खराबियों को दूर करने में तो आधुनिक चिकित्सकों को आंशिक सफलता मिली परन्तु जिनमें प्राण ऊर्जा का मौलिक प्रवाह ही नहीं हों, उनको सुधार पाने में उन्हें अभी तक सफलता नहीं मिली।

संयम ही जीवन है

स्वास्थ्य की दृष्टि से इन पर्याप्तियों और प्राणों का बहुत महत्त्व होता है। अतः प्राणों और पर्याप्तियों का संयम एवं सदुपयोग सर्वाधिक आवश्यक है। पर्याप्तियों और प्राण के संयम का मतलब हम उनका अनावश्यक दुरुपयोग अथवा अपव्यय न करें, अपितु अनादिकाल से आत्मा के साथ लगे कर्मो से छुटकारा पाने हेतु सदुपयोग एवं सम्यक पुरुषार्थ करें।

आहार संयम- जीवन चलाने के लिये जितना आवश्यक हों, निर्दोष, शुद्ध सात्त्विक, भक्ष्य-अभक्ष्य, का विवेक रखकर आहार-पानी आदि ग्रहण करना। भोजन को प्रसाद की भांति प्रसन्नता पूर्वक शांत चित्त से करना।

शरीर का संयम- शरीर की अनावश्यक प्रवृत्तियों से बचना, बिना कारण न तो चलना-फिरना, उठना-बैठना, सोना और न प्रमाद करना। परन्तु आत्म-विकारों को दूर कर कर्मो से मुक्त करने हेतु सम्यक् पुरुषार्थ करना।

इन्द्रियों का संयम- आँख है तो दिखेगा, देखे बिना नहीं रहा जा सकता। दिखना अलग है, देखना अलग है, देखते रहना अलग है, दिखने वाले की प्रतिक्रिया करना, स्मृति रखना, कामना करना अथवा आसक्ति रखना अलग-अलग देखने के स्तर होते हैं। अतः क्या देखना और क्या नहीं देखने का विवेक ही आँख का संयम होता है। स्वाध्याय, सेवा, संत-दर्शन आँखों का सदुपयोग है तो काम-विकार बढ़ाने वाले साहित्य को पढ़ना एवं दृश्यों को देखना आँखों का दुरुपयोग होता है। इसी प्रकार कान है तो सुनायी देगा। परन्तु सुनायी देना अलग है, सुनना अलग है, सुनते रहना अलग है तथा सुने हुए की स्मृति, कामना, रखना अलग होता है। राग-द्वेष और काम-विकार बढ़ाने वाली विकथाएँ आदि सुनना कानों का दुरूपयोग होता है। अतः कानों से क्या सुनना और क्या नहीं सुनने का सम्यक् विवेक आवश्यक होता है। इसी प्रकार नाक, जीभ एवं शरीर का सदुपयोग करना चाहिए। इन्द्रियों से

क्षमता से अधिक तथा अनावश्यक कार्य न लेना, वीर्य का नियन्त्रण रखना अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करना, इन्द्रिय विषयों को उत्तेजित करने वाली प्रवृत्तियों एवं वातावरण से यथा संभव दूर रहना, इन्द्रिय संयम होता है।

श्वास का संयम- मन्द गति से पूर्ण श्वास लेना तथा पूरक और रेचक के साथ-साथ कुम्भक कर श्वास को अधिकाधिक विश्राम देना। जितना अधिक श्वास का संयम होता है, उतना व्यक्ति तनाव के कारणों से सहज बच जाता है। इससे शरीर और मन को बहुत आराम मिलता है। आवेग नहीं आते हैं। आवेग से शरीर में असंतुलन और रोग होने की संभावनाएँ बढ़ जाती है।

भाषा का संयम- अनावश्यक बोलने से जीवनी शक्ति क्षीण होती है। आवश्यकता पड़ने पर सभ्य भाषा में सीमित एवं मधुर बोलना अथवा मौन रहना आदि वाणी का संयम होता है। निंदा करना, चुगली करना, गाली या अपशब्द बोलना, स्वप्रशंसा, क्लेशकारी भाषा बोलना, झूठे कलंक, आरोप लगाना, बिना कारण पंचायती करना, गप्पे मारना, व्यंग करना आदि वाणी का दुरुपयोग होता है। सोच समझ कर तोल-तोल कर क्या, कहाँ और कैसे बोलना तथा क्यों और कहाँ चुप रहने का विवेक भाषा का संयम होता है। मौन रखना भाषा का उत्कृष्ट संयम होता है। वाणी के प्रकम्पन हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। ध्वनि और मंत्र चिकित्सा का यही आधार होता है। वाणी शरीर और मन दोनों को प्रभावित करती है।

मन का संयम- मन से अनावश्यक मनन, चिन्तन, स्मृति और कल्पनाएँ न करना अर्थात् मन की सम्यक् प्रवृत्ति करना। मनोबल कमजोर करने वाले दृश्यों को न तो देखना और न सुनना मन का संयम होता है। हिंसा, क्रूरता, घृणा, कामुकता, भय इत्यादि मनोबल कमजोर करने वाली प्रवृत्तियों से मन का असंयम होता है।

उपरोक्त सभी पर्याप्तियों का सम्यक् उपयोग अर्थात् संयम स्वास्थ्य की कुंजी होता है। सभी रोगों का कारण पर्याप्तियों के असंयम से होने वाले प्राणों का असंतुलन ही होता है। पर्याप्तियों के संयम से शरीर में रोग उत्पन्न होने की संभावनाएँ काफी कम हो जाती है और यदि रोग की स्थिति हो भी जाती है तो आहार एवं अन्य पर्याप्तियों, के संयम से पुनः शीघ्र स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सकता है।

जो प्राण हम दे नहीं सकते, उनको लेने का हमें क्या अधिकार ? पशु भले ही बेजुबान हो, बेजान नहीं होते। दुःख देने से दुःख ही मिलेगा। यह कर्म का सनातन सिद्धान्त है। प्रकृति के न्याय में देर हो सकती है, परन्तु अन्धेर नहीं। अतः प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष पशु हिंसा करने, कराने अथवा अनुमोदना करने वालों के लिए ऐसी हिंसा कर्जा चुकाने के लिए ऊँचे ब्याज पर कर्जा लेने के समान नासमझी ही है।

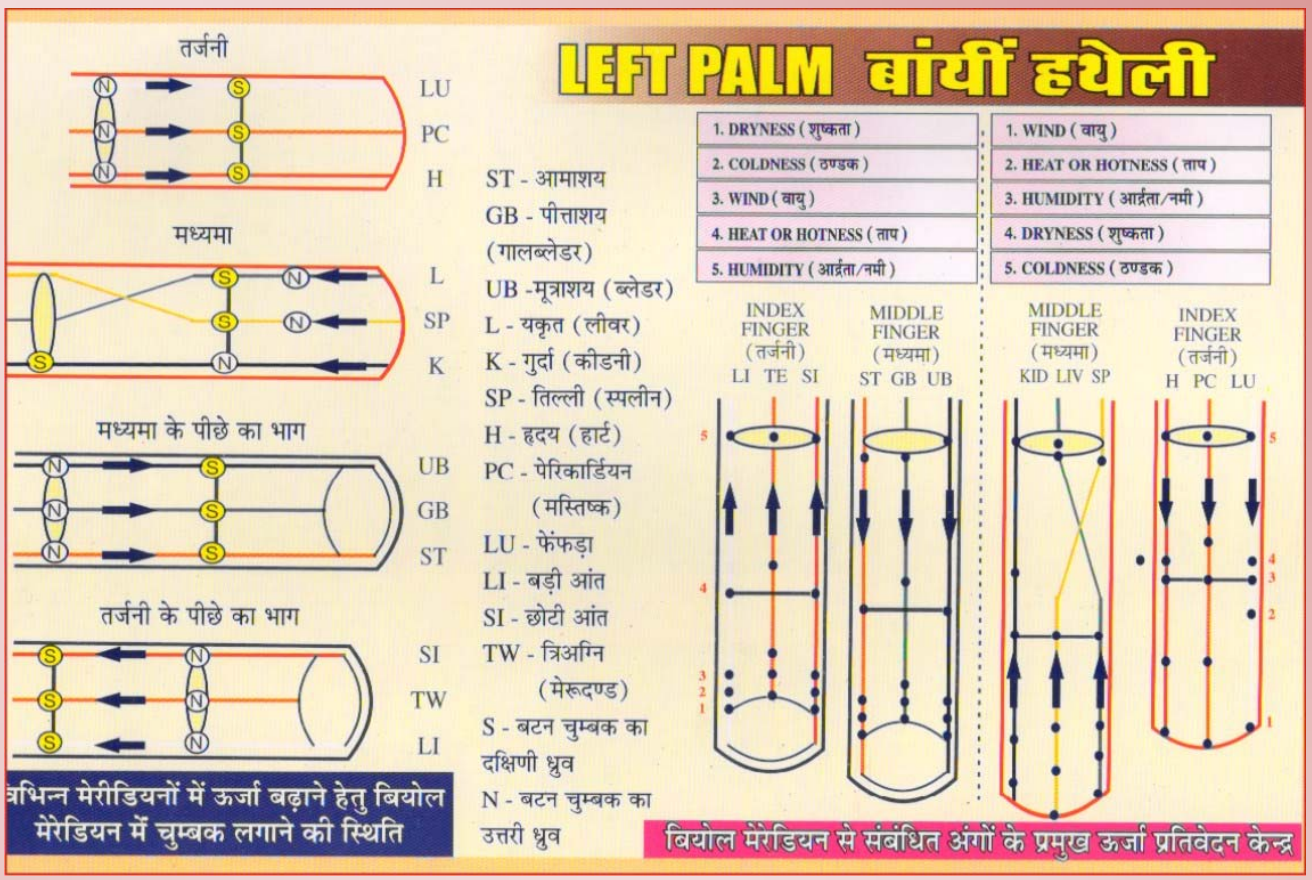

विकार रोग का सूचक है

स्वास्थ्य का अर्थ होता है- विकारमुक्त अवस्था। रोग का तात्पर्य विकारयुक्त अवस्था यानि जितने ज्यादा विकार उतने ज्यादा रोग। जितने विकार कम उतना ही स्वास्थ्य अच्छा। विकार का मतलब अनुपयोगी, अनावश्यक, व्यर्थ, विजातीय तत्त्व होते हैं। जब ये विकार शरीर में होते हैं तो शरीर रोगी बन जाता है, परन्तु जब ये विकार मन, भावों और आत्मा में होते हैं तो क्रमशः मन, भाव और आत्मा विकारी अथवा अस्वस्थ कहलाती हैं। विकारी अवस्था का मतलब है विभाव दशा अथवा विपरीत स्थिति। जितने-जितने विकार, उतनी-उतनी विभाव दशा।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए नियमित स्वाध्याय, ध्यान, शुभ भावनाओं का सम्यक् चिन्तन, अनासक्ति एवं निःस्पृही जीवनचर्या, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् आचरण में प्रवृत्ति का अभ्यास, संयमित, नियमित, परिमित जीवन शैली, मौसम के अनुकूल, सात्त्विक पौष्टिक खान-पान, शुद्ध प्राणवायु का अधिकाधिक सेवन, स्वच्छ हवा एवं धूप वाला आवास एवं क्रिया स्थल, नियमित आसन, प्राणायाम, व्यायाम, निद्रा, उपवास, स्वास्थ्य के अनुकूल दिनचर्या आवश्यक होती है।